International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 7.150, Volume 06, No. 04(II), October - December, 2024, pp. 84-90

प्रतापगढ़ जिले में जल संरक्षण का प्रबन्धन एवं नवीनीकरण

मनोज कुमार कारपेन्टर*
डॉ. चन्द्रमोहन राजोरिया**

सार

जल एक अति महत्वपूर्ण संसाधन हैं जल ही जीवन है तथा जल का अन्य कोई विकल्प नहीं है। इसका उपयोग न केवल पीने के लिए किया जाता है बल्कि इसके विविध उपयोग हैं। सम्पूर्ण जीव जगत के लिए जल उतना ही आवश्यक है जितना भोजन और वायु है। बिना जल के पृथ्वी पर जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। जल संसाधन के संबंध में हमारा देश संसार के सम्पन्न देशों में गिना जाता रहा है। हमारे यहा संसार की बड़ी–बड़ी नदियां बहती है परन्तु निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या तथा जल के उचित प्रबंध के अभाव के कारण जल आज एक दुर्लभ संसाधन बन गया है। भारत में विश्व की 16 प्रतिशत आबादी निवास करती है परन्तु भारत में विश्व का केवल 4 प्रतिशत जल ही उपलब्ध है। राज्य में तो हालत इससे भी बदतर है। यहां देश की कुल जनसंख्या की 5.5 प्रतिशत आबादी निवास करती है। जबकि देश के कुल जल का केवल 1 प्रतिशत जल ही राज्य में उपलब्ध है। जिले की स्थिति राज्य के अन्य भागों की अपेक्षा कुछ बेहतर है परंतु वर्षा की अनियमितता तथा अनिश्चितता के कारण तथा जल संसाधन के उचित प्रबंधन के अभाव में क्षेत्र की स्थिति भी लगातार खराब हो रही है। जल का महत्व सभी स्थानों पर समान रूप से है शहरी क्षत्रों में इसकी उपयोगिता पेयजल के लिए है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में इसका महत्व पेयजल के साथ–साथ कृषि, बागवानी तथा पशुधन आदि के लिए है कृषि क्षेत्र जल का सबसे बड़ा उपयोगकर्ता है।

शब्दकोशः *जल संरक्षण, जनसंख्या, कृषि, जल संसाधन, भूगर्भिक जल।*

प्रस्तावना

भारत में 80 प्रतिशत तथा राज्य में 83 प्रतिशत जल का उपयोग कृषि कार्य के लिए किया जाता है तथा लगभग 5 प्रतिशत जल का उपयोग घरेलु कार्यों के लिए किया जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि विभिन्न क्षेत्रों में जल की खपत में नियमित वृद्धि हो रही है जबकि राजस्थान राज्य का अधिकतर भाग शुष्क है तथा भूगर्भिक जल की गहराई भी अधिक पाई जाती है। प्राचीन काल से ही हमारा देश कृषि प्रधान देश रहा हैं तथा राजस्थान के दक्षिण में स्थित अध्ययन क्षेत्र (प्रतापगढ़ जिला) भी कृषि प्रधान क्षेत्र है। यहां का कृषि तंत्र प्रायः वर्षा पर ही आश्रित है। जो कि अनियमित तथा अनिश्चित होती है जिसके कारण वर्षा से प्राप्त सम्पूर्ण जल का उपयोग सम्भव नहीं होता है और अधिकांश वर्षा जल नदी नालों में बहकर चला जाता है। वर्षा जल का पूर्ण उपयोग करके न केवल कृषि उत्पादन में आशातीत वृद्धि कर सकते है बल्कि घरेलू तथा औद्योगिक उपयोग के

* शोधार्थी, भूगोल विभाग निर्वाण विश्वविद्यालय जयपुर, राजस्थान।
** निर्देशक, भूगोल विभाग निर्वाण विश्वविद्यालय जयपुर, राजस्थान।

लिए भी इसका उपयोग कर सकते हैं। जनसंख्या के बढ़ने के साथ ही खाद्यान्न की आवश्यकता भी बढ़ी है। कृषि में उत्पादन में वृद्धि के लिए जल का उचित उपयोग आवश्यक है. वर्षा के सीमित होने से भूगर्भीय जल का अति दोहन हो रहा है। जिससे भूजल स्तर निरन्तर गहरा होता जा रहा है। अतः जिले के समग्र विकास के लिए जल संसाधन एक महत्वूपर्ण संसाधान है। कृषि उत्पादन व उत्पादकता बढ़ाने, कुटीर व लघु उद्योगों के विकास के लिए तथा घरेलू उपयोग के लिए जल अत्यावश्यक संसाधन है अतः जल संसाधन के समुचित सदुपयोग तथा सुनियोजित प्रबंधन की आवश्यकता है।

शोध का उद्देश्य

शोध का मुख्य उद्देश्य अध्ययन में जल संरक्षण का नवीनीकरण करते हुए आधुनिकी तकनीकों के प्रयोगों का अध्ययन करते हुए उसमें सुधार की सम्भावनाओं से अवगत करवाने का उद्देश्य रखा गया है। शोध के प्रमुख शोध के उद्देश्य निम्न हैः–

- कृषि उत्पादन में जल की नवीनतम विधियों व साधनों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- जल संसाधनों का मूल्यांकन करना एवं इनके संरक्षण हेतु आधुनिक तकनीकों 'का मूल्यांकन करना।
- जल संरक्षण व सिंचाई गहनता में सम्बन्ध स्थापित करना।
- प्रभावित करने वाले कारकों को ज्ञात कर उनके समाधान हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध पत्र में जल संरक्षण एवं नवीनीकरण को विकसित तरीके से अधिक विकसित करना है किंतु इस बीच आए पर्यावरणीय सामाजिक आर्थिक चुनौती एवं उत्तरदायित्व जिम्मेदारियों के विशेष संदर्भ में राजस्थान के विभिन्न गांव में मेरे द्वारा स्वयं जाकर निरीक्षण किया गया जहां का भौगोलिक स्वरूप का तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक विधि के आधार पर प्रारूप प्रस्तुत किया गया अन्य इस अध्ययन को अधिक विश्लेषणात्मक एवं वैज्ञानिक बनाया गया है इस लघु शोध अध्ययन में प्राथमिक व द्वितीयक आंकड़ों विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं की सहायता से विकसित किया गया इसमें प्राथमिक आंकड़ों को यथा योग्य विधियों साक्षात्कार आदि द्वारा एकत्रित किए गए तथा द्वितीयक आंकड़ों को लघु शोध प्रकाशित एवं प्रकाशित स्रोतों द्वारा सरकारी कार्यालयों द्वारा एवं विभागों में जाकर आंकड़ों को एकत्रित किया गया एवं उनका विस्तृत अध्ययन कर आधारभूत संख्या की विधियों के द्वारा निर्देशित व संश्लेषित किया गया अध्ययन किए गए गांव में कई विधियां एवं समस्याएं सामने देखने को मिली जो एक रुकावट बन सकती है यह प्रमुख चुनौतियां हैं जिनका सामना करना जरूरी है

अध्ययन क्षेत्र

प्रतापगढ़ जिला राजस्थान राज्य के दक्षिण पूर्व में स्थित है जिसका गठन 26 जनवरी 2008 को हुआ। भूजल संसाधन का आकलन GEC 97 के द्वारा अनुमोदित मापदण्डों के आधार पर किया गया है। भूजल संसाधन का आकलन करते समय लवणीय तथा पर्वतीय क्षेत्रों पर विचार नहीं किया जाता है। अध्ययन क्षेत्र में कुल भूजल संसाधन की मात्रा जल स्तर परिवर्तन विधि के आधार पर आंकी गई है। राजस्थान तथा अध्ययन क्षेत्र में भूजल प्रमुख जल स्त्रोत है। धरातलीय सतह के नीचे सुराखो तथा रिक्त स्थानों में संचित जल को भूजल कहते है भूजल का प्रमुख स्त्रोत वर्षा जल तथा हिम द्रवित जल है। वर्षा जल का एक भाग निस्यन्दन द्वारा भू पदार्थों से रिसकर नीचे पहुंच कर बड़े बड़े रिक्त स्थानों में एकत्रित हो जाता है।

प्रतापगढ़ जिला क्षेत्रफल में, भारत के सबसे बड़े राज्य राजस्थान का 33वां जिला है। प्रतापगढ़ जिला के $23^0$40′ से $24^0$50′ उत्तरी अक्षांश व $74^0$19′ से $74^0$94′ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थिति है। संभाग मुख्यालय उदयपुर से यह 179 किलोमीटर या 111 मील दूर है। राजस्थान के कुल क्षेत्रफल 342239 वर्ग किमी. के विपरीत जिले का कुल क्षेत्रफल 4117.36 वर्ग किमी. है। वर्तमान समय में जिले में 5 उपखण्ड, 5 तहसीलें, 5 पंचायत समितियाँ तथा 165 ग्राम पंचायतें हैं। प्रतापगढ़ जिले में कुल 1014 गांव है जिसमें से 975 आबाद व 38 गैर आबाद गांव हैं। यह जिला समुद्रतल से औसतन 1610 फीट या 491 मीटर ऊंचाई पर बसा हुआ है। जिले की

कुल जनसंख्या वर्ष 2011 के आंकड़ों के आधार पर 867848 है जिसमें पुरूष जनसंख्या 437744 एवं स्त्री जनसख्या 430104 है। जिले की कुल जनसंख्या में शहरी जनसंख्या 71807 एवं ग्रामीण जनसख्या 796041 है। जिले में जातिगत जनसंख्या के आधार पर अनुसूचित जाति की 60429 व अनुसूचित जनजाति की संख्या 550427 है। जिले का जनसंख्या घनत्व 211 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है। जिले का लिंगानुपात 982 महिलाएं प्रति हजार पुरूष है जिसमें ग्रामीण लिंगानुपात 984 व शहरी लिंगानुपात 983 दर्ज किया गया है।

जल संसाधन का प्रबंधन

आज सुरक्षित व पर्याप्त जल का संकट गहराता जा रहा है। जल संसाधन प्रबन्धन से तात्पर्य है, "ऐसा कार्यक्रम बनाना जिससे किसी जल स्त्रोत या जलाशय को क्षति पहुंचाये बिना विभिन्न उपयोगों के लिए अच्छे किस्म के जल की पर्याप्त पूर्ति हो सके।" जल प्रबन्धन के अन्तर्गत भूमिगत जलाशयों का पुनर्भरण आवश्यकता से अधिक जल वाले क्षेत्रों से अभाव वाले क्षेत्रों की ओर जलापूर्ति करना, खेतों में वर्षा के दौरान जल के बहाव को रोकना आदि आते हैं। जल का अति उपयोग अपर्याप्त संसाधन की ऐसी बर्बादी है अध्ययन क्षेत्र में बढ़ती हुई जनसंख्या, भूजल का मशीनों एवं विद्युत यंत्रों द्वारा अंधाधुंध दोहन, वर्षा की घटती मात्रा एवं वर्षा ऋतु में वर्षा दिनों का निरन्तर घटना, अधिकाधिक जल उपयोग वाली फसलों का उत्पादन तथा परम्परागत जल स्त्रोतों जैसे बावड़ी, टांका आदि का उपयोग नहीं होना आदि के कारण भूजल संसाधन निरन्तर घटते जा रहे हैं।

शहरी क्षेत्रों में पेयजल प्रबंध

प्रतापगढ़ जिले में गर्मियों के समय सतही जल संग्रहण तथा भूजल में कमी के कारण पानी की कमी हो जाती है पेयजल की आपूर्ति जल स्वास्थ्य अभियान्त्रिकी विभाग, कृषि विभाग के साथ सामंजस्य रखकर करता है। इसके लिए कृषि विभाग के तालाबों तथा बांधों में एक निश्चित सीमा तक जल को पेयजल के लिए सुरक्षित रखा जाता है निकटवर्ती कस्बों को पानी की आपूर्ति की जा सके। इसके अतिरिक्त खानों का पानी जो अभी व्यर्थ में बहाया जा रहा है कुछ सुरक्षित उपाय करके वह पानी भी पेयजल के काम में लिया जा सकता है। पेयजल के लिए भूजल का उपयोग कुओं, नलकूपों तथा हैण्डपम्पों के माध्यम से किया जाता है। जब वर्षा सामान्य होती है वहां पेयजल परियोजनाओं मुख्यतः भूजल पर ही आधारित होती है, इसके लिए कुंओं तथा हैण्डपम्पों की स्थापना जल स्वास्थ्य अभियान्त्रिकी विभाग, पंचायत समितियां तथा निजी व्यक्तियों द्वारा की जाती है।

ग्रामीण क्षेत्र में पेयजल प्रबंधन

ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल के मुख्य स्त्रोत कुंऐं, नलकूप तथा हैण्डपम्प है। पाइपो द्वारा पेयजल की आपूर्ति व्यवस्था अभी विकसित नहीं हुई है। पानी आपूर्ति का मुख्य स्त्रोत हैण्डपंप ही है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि के लिए अधिक भूजल के उपयोग करने तथा अकाल जैसी प्राकृतिक आपदाओं के कारण भूजल लगातार गहरा होता जा रहा है जिसके कारण पेयजल आपूर्ति के स्त्रोत निरन्तर सूख रहे हैं। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युत की आपूर्ति अनियन्त्रित एवं कम होने के कारण भी पेयजल आपूर्ति के समय समस्या उत्पन्न होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में गर्मियों में पेयजल की समस्या उत्पन्न हो जाती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न टांकों को घरों की छतों से जोड़कर भी पानी को टांकों में संग्रह किया जाना चाहिए। हैण्डपंपों की नियमित देखभाल करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त कुओं तथा नलकूपों का पुनर्भरण करने के लिए एनिकटों का निर्माण किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त छोटे बांध, बड़े बांधों की अपेक्षा अधिक कारगार सिद्ध हो सकते हैं। अतः छोटे–छोटे बांधों के निर्माण की ओर ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

सिंचाई जल का प्रबंधन

क्षेत्र में विभिन्न संरचनात्मक निर्माण जैसे रेल लाईन निर्माण, सड़कों का निर्माण, नगरीयकरण का विस्तार, औद्योगिक क्षेत्रों की स्थापना, भूमि पर विभिन्न प्रकार के अतिक्रमण तथा कमाण्ड क्षेत्र में एनिकटों के निर्माण के कारण पानी के बहाव में रूकावट उत्पन्न हो रही है। जिससे विभिन्न बांधों, तालाबों के जल संग्रहण

क्षेत्रों में जल के संग्रह में कमी आई है इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के वातावरणीय परिघटनाओं के कारण वर्षा में कमी के कारण भी कमाण्ड क्षेत्रों में जल के बहाव में कमी आई है। क्षेत्रों में वनों के कटाव के कारण भी अधिक वाष्पन, भूमि अपरदन, नदियों के बहाव क्षेत्र में भूगर्भिक संरचना में परिवर्तन ने भी कमाण्ड क्षेत्र में जल के बहाव को प्रभावित किया है। अतः नदियों के कमाण्ड क्षेत्र का भू–विकास आवश्यक है।

बांध/तालाब संग्रहण प्रबंधन

क्षेत्र में तालाबों तथा बांधों के जल संग्रहण में सबसे बड़ी रुकावट उनके पेटे में की जाने वाली काश्त से है। इस काश्त के कारण किसान नदी के पानी संग्रहण के लिए पानी के बहाव के रास्ते में रूकावट उत्पन्न कर देते है। इसके अतिरिक्त तालाबों के जल संग्रहण क्षेत्र में विभिन्न अतिक्रमण, तालाबों के पेटे में गाद जमने के कारण उनकी भराव क्षमता में कमी भी अन्य बड़े कारण है जो कि इसके महत्व को कम करते है। तालाबों की भराव क्षमता के लिए वर्षा की गहनता तथा कमाण्ड क्षेत्र की संरचना दोनों कारण समान महत्व रखते है।

जल प्रबन्धन के उपाय

अतः नहरी पानी की फिजूल खर्ची रोकने के लिए प्रशासन को नहरी पानी की वार बंदी निश्चित करनी चाहिए। नहरी क्षेत्रों में सिंचाई के लिए कुओं तथा नहरों के पानी का संयुक्त रूप से प्रयोग करना चाहिए जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति भी बनी रहेगी तथा जल लग्नता से भी छुटकारा प्राप्त होगा। क्योंकि नहरी पानी के लगातार प्रयोग करने से भूमि में जल की अधिकता हो जाती है तथा भूमिगत जल का स्तर भी ऊंचा उठ जाता है। जिससे दलदली भूमि का निर्माण हो जाता है तथा उस स्थान की पारिस्थितिकी में भी परिवर्तन हो जाता है अतः कुओं तथा नहरों के संयुक्त प्रयोग से क्षेत्र में जलीय तथा पारिस्थितिकीय संतुलन बना रहेगा। क्षेत्र में नदियों तथा छोटी–छोटी सहायक नदियों पर अनेक एनिकटों का निर्माण किया गया है। किसान इन एनिकटों से सीधे पम्पों द्वारा खेती करते हैं। जिससे इन एनिकटों को बनाने का वास्तविक उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता है। किसी स्थान पर एनिकट का निर्माण भूजल के स्तर को बढ़ाने के लिए किया जाना चाहिए जिससे कुओं तथा नलकूपों के द्वारा सिंचाई सम्भव हो सके तथा पानी का दुरुपयोग नहीं हो।

अतः जिस भूमि पर उनसे सिंचाई सम्भव नहीं होती है वह क्षेत्र शुष्क कृषि के अन्तर्गत बोया जाता है। शुष्क कृषि के लिए भूमि में नमी का संरक्षण आवश्यक है। इसके लिए परम्परागत जल संरक्षण संरचना के साथ–साथ आधुनिक अपवाह प्रबन्ध तथा बहते जल के प्रबन्ध के द्वारा संरक्षण आवश्यक है, इसके लिए खेत की मेड़ बंदी, नाड़ा बंदी के साथ साथ छोटे तथा मध्य आकार के पत्थरों के बांधों से खेत का पानी खेत में रोकना आवश्यक है। जिससे वर्षा के समय गहराई तक नमी पहुंच सके, जिससे शुष्क कृषि के अन्तर्गत फसलें 'उत्पन्न की जा सके।

वर्षा जल संचयन एवं भूजल पुनर्भरण

योजित भूजल एवं सतही जल (वर्षा जल) के दोहन से उत्पन्न समस्याओं को ध्यान में रखते हुए जल संसाधन के सतत् उपयोग के लिए जल संसाधन संरक्षण आवश्यक होता है। वर्षा जल को एकत्रित कर उसका समुचित उपयोग करना ही वर्षा जल संचयन है। भूजल संसाधनों का कृत्रिम पुनर्भरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी क्षेत्र में विद्यमान मृदा एवं चट्टानों की रचना के अनुरूप संरचना का निर्माण कर वर्षा जल के बहाव को एक निश्चित दिशा देकर जल रिसाव में वृद्धि करना तथा भूजल भण्डार के पुनर्भरण में योगदान देना है। वर्षा जल संचयन एवं कृत्रिम भूजल पुनर्भरण निम्न स्त्रोतों–सतही जल का भण्डारण (तालाब, पोखर, बावड़ी आदि), जल का भूमिगत संरक्षण (टांका, कुंड आदि), जलभृत का कृत्रिम पुनर्भरण (नलकूप, कुरें, हैण्डपम्प आदि), द्वारा किया जा सकता है।

जल ग्रहण प्रबन्धन

जलग्रहण विकास कार्यक्रम जल संसाधनों के बेहतर उपयोग द्वारा पैदावार बढ़ाने का एक समन्वित प्रयास है। यह तकनीक स्थानीय समस्याओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करती है और स्थानीय लोगों के सहयोग से

परम्परागत ज्ञान का लाभ उठाते हुए इनका समाधान करने का प्रयास करती है। स्थानीय लोगों के सहयोग से खोजे गये समाधान समाज में आसानी से प्रचलित किये जा सकते हैं। वैसे ही सदियों से संसाधनों का उपयोग परोक्ष रूप से जलग्रहण की सीमाओं द्वारा ही निर्धारित किया जाता है। जलग्रहण विकास कार्यक्रम विभिन्न उद्दे श्यों से अभिप्रेरित हैं। उसमें प्राथमिक संसाधनों (भूमि एवं जल) के विकास की एक ऐसी रणनीति तैयार की जाती है, जिसके द्वारा हम अपने अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन उद्देजश्यों की पूर्ति कर सकते हैं। इसके द्वारा पानी के बहाव को नियन्त्रित कर भूमि कटाव पर रोक, जल संख्क्षण एवं भूगर्भिक जल में वृद्धि, वैज्ञानिक और तकनीकी रूप से उपयुक्त कृषि, बागवानी एवं चारागाह पद्धतियों का विकास आदि कर सकते हैं। जल तथा मृदा प्रकृति के दो मूल्यवान उपहार हैं।

समतलीकरण एवं मेड़बन्दी

सर्वप्रथम ऊबड़–खाबड भूमि को समतल तथा जोतों की मेड़बन्दी करनी चाहिए ताकि क्षेत्र में पानी अनियन्त्रित रूप में बहकर न तो मृदा अपरदन करेगा और न ही अवनालिकाएं विकसित होकर भूमि खराब होगी। विभिन्न आकार के जोतों की मेड़बन्दी से एक खेत का पानी दूसरे खेल में नहीं जायेगा तथा खेत में पर्याप्त समय तक पर्याप्त नमी बनी रहेगी तथा खेत के ऊपरी खाद का भी दूसरे खेत में प्रसरण नहीं होगा। एक खेत का तल ऊंचा व दूसरे का तल नीचा होने से ऊंचे वाले खेत से हवा द्वारा तीव्र गत्ति से मृदा अपरदित होकर निम्नतल वाले खेत में मिट्टी आकर जमा होने लगती है ऐसे खेतों के मृदा संरक्षण के लिए कणाबन्दी की जाती है। कणाबन्दी के अन्तर्गत सूखी झाड़ियों एवं घास–फूस की कतार हवा के बहाव की दिशा के आड़े में लाइनें बना दी जाती हैं, जिससे मिट्टी का उड़ना रूक जाता है और सूखी झाड़ियां गलकर जैविक खाद का निर्माण करती हैं, जिससे अच्छी पैदावार होती है और टीलों के बनने में कमी आती है।

वानस्पतिक छानक पट्टी का निर्माण

अनियमित एवं निरन्तर परिवर्तित होकर बहने वाली वायु प्रवाह वाले धरातल पर वानस्पतिक छानक पट्टी स्थानीय झाड़ियों द्वारा रोपित कर तैयार की जाती है। इसका रोपण इस प्रकार किया जाता है, जो एक जाली की आकृति में विकसित हो तथा प्रवाहित होने वाला जल उसमें से छनकर आगे बढ़ जाता है। इसमें से होकर जल के आगे प्रवाहित होने पर जल के प्रवाह की गति कम होने के साथ ही साथ उसके साथ बहकर आने वाली मिट्टी भी छनकर आगे नहीं बह पाती है एवं अपरदन पर नियंत्रण लगता है। इसके अतिरिक्त जलग्रहण क्षेत्र में एक वानस्पतिक पट्टी के रूप में जैव संहति की उपलब्धता भी बढ़ती है। वानस्पतिक छानक पट्टी विकसित हो जाने पर प्रवाहित जल धीरे–धीरे भूमिगत होकर भूजल वृद्धि करता है। यह कृषि एवं अकृषि दोनों प्रकार की भूमि के लिए उपयुक्त है।

वानस्पतिक बाड़बन्दी

जल ग्रहण विकास कार्यक्रमों द्वारा फसलों एवं चरागाहों में घासों की प्रारम्भिक अवस्था में सुरक्षा के लिए खेतों के चारों ओर वनस्पति की बाड़बन्दी की जाती है जिसे वानस्पतिक बाड़बन्दी कहते हैं। इसके लिए कांटेदार झाड़ियों में झड़बेर, गोखरू तथा थोर के पौधों द्वारा जल्दी बढ़ने वाले एवं काफी ऊंचाई तक जाने वाले पेड़ों द्वारा खेत के चारों ओर मेड़ के रूप में एक दीवार बनाई जाती है जिससे संरक्षणात्मक गतिविधियों को बल मिलता है। इसके द्वारा अकृषि क्षेत्र में तथा कृषि क्षेत्र में बाड़बन्दी की जाती है। यदि अतिचारण द्वारा इस मेड़ के विकसित होने में असुरक्षा हो तो इसके सहारे एक खाई खोदकर दोनों किनारों पर डोली (मेड़) बना दी जाती है। छोटे सोखने वाले तालाब व एनीकटों का निर्माण तीव्र ढ़ाल वाले खेतों में सबसे निचले स्थान में तथा अपवाह क्षेत्र के ऊपरी भागों में तीव्र गति से बहते हुए जल के मार्ग में गड़वे खोदकर विभिन्न तालाबों का निर्माण किया जाता है।

आधुनिक सिंचाई विधियां

विभिन्न क्षेत्रों में फसलों की प्रकृति के अनुसार विभिन्न सिंचाई की विधियां अपनाई जाती है। किसी क्षेत्र विशेष में सिंचाई की विधि का चुनाव करते समय कुछ तथ्यों को ध्यान में रखा जाता है, जिसमें मुख्य निम्न हैं जिस मृदा में सिंचाई करनी है उसमें सिंचित जल का अन्त स्पन्दन होना चाहिए अन्यथा जलाक्रान्ता द्वारा भूमिगत लवण मृदा के ऊपर जमा हो जायेंगे। सिंचित जल पौधों की जड़ों तक पहुंचाना आवश्यक, किसी विशेष विधि द्वारा जल का प्रवाह अधिक नहीं होना चाहिए, चयनित सिंचाई विधि में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों के उपयोग में होने वाली कठिनाइयों को ध्यान में रखना आवश्यक है, उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त सिंचाई विधि पर स्थालाकृति, जलवायु, सिंचाई के साधन, फसलें, जल संरक्षण, आर्थिक तत्व एवं श्रम आदि तत्वों का प्रभाव पड़ता है। अध्ययन क्षेत्र में परम्परागत सिंचाई विधियों में क्यारी सिंचाई विधि या मेड़बन्दी सिंचाई विधि, कुण्ड सिंचाई विधि, पट्टीदार सिंचाई विधि, थालावार सिंचाई विधि आदि मुख्य हैं। क्षेत्र में क्यारी सिंचाई विधि का प्रयोग करने पर नालियों में रिसने से पानी का अधिक अपव्यय होता है। इसमें श्रम की अधिक आवश्यकता होती है।

(अ) बूंद–बूंद सिंचाई विधि

इस विधि के अन्तर्गत मुख्य व शाखा पाइप लाइनों को कृषि भूमि पर जालरूप में बिछा दिया जाता है और मोटर से दबावयुक्त जल प्रवाह करवाया जाता हैं। इससे पौधों की जड़ों में बूंद–बूंद करके नोजल की सहायता से जल सीधे प्रवाहित होता है। इस पद्धति में 40 से 70 प्रतिशत पानी की बचत होती है। इस प्रणाली से जल संखण के साथ–साथ वाधीकरण व भूमि में रिसाव के कारण होने वाले जल की बर्बादी को रोका जा सकता है। इसमें नालियों एवं क्यारियों की आवश्यकता नहीं पढ़ती है। इसमें पानी सारे खेत में न फैलकर केवल पौधे के आस–पास ही पहुंचता है, जिससे खरपतवार नहीं फैलती है। खाद एवं कीटनाशकों को घोल के रूप में पानी के साथ सीधा पौधों की जड़ों तक पहुंचाया जा सकता हैं

(ब) फव्वारा सिंचाई विधि

यह सिंचाई विधि वर्तमान समय में सिंचाई जल प्रबन्ध की आसान एवं सरल विधि है। इसके द्वारा सम्पूर्ण भूमि फसल उगाने के लिए उपलब्ध रहती है, जबकि परम्परागत सतही सिंचाई विधियों में 15 से 20 प्रतिशत भूमि खालों एवं मेड़ों के रूप में रिक्त रहती है। इत्त विधि में मेड़ों व खालों के न होने से आधुनिक यन्त्रीकरण भी सम्भव है। फळारा सिंचाई विधि में पानी के स्त्रोत से खेतों तक पानी नलों द्वारा ले जाया जाता है, जबकि सतही विधियों में चोरों द्वारा जिससे कुल पानी की मात्रा का 30–45 प्रतिशत भाग ही फसलों को मिल पाता है, जबकि फव्वारा सिंचाई विधि में यह हानि नहीं होती है। इस विधि द्वारा भूजल स्तर का सन्तुलन भी बना रहला है।

(स) शुष्क कृषि पद्धति

अर्द्धशुष्क प्रदेशों में की जाने वाली कृषि जिसके अंतर्गत उपलब्ध सीमित नमी को संचित करके बिना सिंचाई के ही फसले उगाई जाती हैं। कृषि के लिए जब जल का स्त्रोत एक मात्र वर्षा जल ही होता है तो इसे शुष्क कृषि भूमि या वर्षा पोषित कृषि कहते हैं। 75 से.मी. से कम वार्षिक वर्षा वाले प्रदेशों में इसे शुष्क कृषि कहते हैं। 175 से.मी. से अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में इसे आर्द्र भूमि कृषि कहते हैं। भारत का लगभग 1/3, कृषि क्षेत्र शुष्क भूमि कृषि के अंतर्गत आता है। शुष्क कृषि भूमि क्षेत्र में प्रति हैक्टेयर उत्पादकता कम होती है तथा यह निम्न कृषि गहनता का क्षेत्र होता है। यहां मुख्यतः परम्परागत विधि से कृषि कार्य होता है तथा पशुपालन कार्य कृषि के साथ–साथ होता है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

अध्ययन क्षेत्र में सिंचाई की समस्या को देखते हुए शुष्क कृषि पद्धति उत्तम है। वर्तमान सन्दर्भ में खाद्यान्नों की अधिक मांग और पर्यावरण की बढ़ती हुई उदासीनता के कारण वर्षा की कमी और वर्षा वाले क्षेत्रों का अधिकतम उपयोग जैसे दृष्टिकोण ने शुष्क कृषि पद्धति के महत्त्व को नया दृष्टिकोण प्रदान किया है। जिससे

कि अधिकतम भूमि का उपयोग हो सके। अध्ययन क्षेत्र में कुल कृषि भूमि के केवल 60 प्रतिशत भाग में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है। शुष्क कृषि पद्धति के अन्तर्गत मुख्यतः पानी के हास को रोकना तथा मृदाओं में नमी बनाये रखने के उपाय विकसित करना है। इन तथ्यों के व्यवस्थित प्रबन्ध हेतु वर्षा पोषित व शुष्क क्षेत्रों में निम्न शुष्क कृषि पद्धतियां जलग्रहण आधारित विकास, लघु खेतों का यन्त्रीकरण, शस्य वैविध्यकरण, जल संरक्षण, कृषि भू–पद्धतियां, साधारण जल संचयन व्यवस्था, पशुपालन कृषि को महत्त्व देना अपनायी जाती हैं। शुष्क कृषि पद्धति अपने आप में समस्याओं में जूझती कृषि व्यवस्था है, जिसको विभिन्न प्रकार से जलवायु, मृदा तथा फसल प्रबन्ध सम्बन्धी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अतः अध्ययन क्षेत्र के किसानों को नमी संरक्षण की विधियों तथा शस्य वैज्ञानिक विधियों को अपनाना चाहिए शुष्क कृषि का मूल आधार नमी संरक्षण होता है। अध्ययन क्षेत्र में शुष्क कृषि पद्धति को अपनाने के लिए भूमि में नमी संरक्षण के लिए निम्न विधियों का उपयोग कर सकते हैं ताकि शुष्क कृषि पद्धति द्वारा फसलों का उत्पादन किया जा सके। सर्वप्रथम ऊबड़–खाबड़ भूमि को समतल किया जाये, ताकि खेतों में वर्षा की मात्रा सर्वत्र समान वितरित हो। इससे मृदा में अधिक जल का अवशोषण होगा तथा प्रवाह धीमा होने से मृदा अपरदन भी कम होगा। खेतो में मेड़बन्दी की जानी चाहिए तथा रबी की फसल काटने के तुरन्त बाद गहरी जुताई करनी चाहिए एवं जैविक खाद का प्रयोग करना भी नमी सचय में सहायता करता है। खेतों में वाष्पीकरण की मात्रा घटाने के लिए फसलों के अवशिष्ट अंश, पत्तियां, सूखी घासें, गोबर की खाद. कम्पोस्ट खाद, लकड़ी का बुरादा व पॉलिथीन की चादरें पतवार के रूप में भू–सतह पर वितरित की जानी चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ''जलमंडल – इण्डिया वाटर पोर्टल". मूल से 30 अप्रैल 2014 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 23 जून 2014.
2. (पृथ्वी पर जल का वितरण (यू॰ एस॰ भूविज्ञान सर्वेक्षण)
3. डॉ॰ आश नारायण राय – जल अधिकार का वैकल्पिक संसार (इण्डिया वाटर पोर्टल) Archived 2016-03-06 at the वेबैक मशीनदैनिक भास्कर.
4. नवम्बर 2010 India विश्व की जल 2006–2007 सारणी, पैसिफिक संस्थान Archived 2009–02–28 at the वेबैक मशीन.
5. "BCSD पानी तथ्यों और रुझान". मूल से 1 मार्च 2012 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 27 फ़रवरी 2009.
6. ''संग्रहीत प्रति". मूल से 3 जुलाई 2018 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 2 नवंबर 2018.
7. ''संग्रहीत प्रति". मूल से 27 फ़रवरी 2009 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 27 फ़रवरी 2009.
8. ''विश्व के जलः मीठे जल संसाधनों की द्विवर्षीय रिपोर्ट" (आईलैंड प्रेस, वाशिंगटन डीसी)". मूल से 26 फ़रवरी 2009 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 27 फ़रवरी 2009.
9. ''संयुक्त राष्ट्र की भविष्यवाणी है की सं 2050 तक विश्व जनसँख्या ९.१ अरब हो जायेगी". मूल से 4 मार्च 2012 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 27 फ़रवरी 2009.
10. ''शहरी विकास में भूमिगत जल". मूल से 16 अक्तूबर 2007 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 27 फ़रवरी 2009.

❖◆❖